अध्याय पचासवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नमः॥

"परमात्मा तक पहुँचाने वाला मार्ग दिखाने वाले, पवित्र होकर पापों का विनाश करने वाले, मुनि गणों के मन में बसने वाले ईश्वर, आप मोह पाश तोड़ डालिए; इस पृथ्वी पर स्थित सज्जनों के बंधु होने वाले सिद्धारूढ़जी, मेरी पीड़ा दूर कीजिए, अनुपम सुख देने वाले गुरुनाथजी, मुझे संतों ने तय किया हुआ मार्ग दिखाईए।"

जो जीवों पर अपार करुणा दिखाते हैं, जो भक्तों में स्वयं को ही पाते हैं तथा हमेशा उनकी रक्षा करते हैं, ऐसे सिद्धारूढ़ सतगुरुजी को मेरा प्रणाम। सतगुरुजी का नाम लेकर उनका अनन्य भाव से ध्यान करने से वे सारा भय दूर करते हैं, फिर घर गृहस्थी के कष्टों की कौन सी बड़ी बात है? उनकी अनन्य भाव से सेवा करने से चित्त शुद्धि होती है; उन्हे तन-मन-धन अर्पण करने के पश्चात ही आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है। मनुष्य को गुरु सेवा के लिए अपना शरीर छीजना चाहिए, उस समय सेवा के प्रति भला-बुरा विचार मन में नहीं लाना चाहिए, क्योंकि उस समय गुरु की आज्ञा ही प्रमाण होती है। उस समय अन्य कोई भी विचार वहाँ महत्वपूर्ण नहीं होता। हृदय में उनके प्रति स्नेह को बचाकर, मुख से उनका नाम लेकर निष्काम भाव से सेवा करने से सांसारिक भ्रम दूर होता है। निष्काम सेवा यानी ऐसी सेवा जिसमें अल्प भी फल की आशा न हो। क्योंकि राई भर भी आशा मन में रखकर सेवा करने से, उस सेवा का फल नहीं मिलता। व्यावहारिक दृष्टि से श्रेय प्राप्त होने की कामना से सेवा करने से ऐसी सेवा अधम समझी जाती है। समाज में मानसम्मान प्राप्त होने के लिए शरीर छीजाया जाए तो ऐसी सेवा मध्यम प्रकार की समझी जाती है। सतगुरुजी की सेवा करके उन्हें संतुष्ट करना चाहिए, अपनी सेवा से अगर वे संतुष्ट हो जाए तो हमें उसी को सुख समझना चाहिए, परंतु अगर उन्हें हमारी सेवा नापसंद हो जाए तो हमें उससे दुख होना चाहिए, इसी को उत्तम प्रकार की सेवा कहते है। परंतु इससे भी विशेष सेवा ऐसी होती है जिसमें "मैं तथा मेरा सब कुछ" सतगुरुजी के चरणों में अर्पण करके उनके दास बन जाना; यह सर्वोत्तम सेवा है। श्रोतागण, इस प्रकार के दास्यत्व का लक्षण मैं आप को

कथन करता हूँ, उसे सुनिए। सतगुरुजी के मुख से ही निकला महावाक्य एकाग्र मन से सुनकर उस पर एकांत में अविरत चिंतन करना चाहिए। आत्मस्वरूप के साथ यथायोग्य संबंध प्रस्थापित करने के उपरांत उस वाक्य पर गंभीरता से विचार करके उसे अनुसंधानना चाहिए। प्राप्त हुई गुरु सेवा योग्य अथवा अयोग्य है इस का विचार मन में लाए बगैर, तथा वह गुरु सेवा अन्य किसी के करने की उम्मीद न किए बगैर, हमें स्वयं पूर्ण रूप से करनी चाहिए। इस प्रकार से जो सेवा करता है, उसी को ज्ञान प्राप्ति का अधिकार प्राप्त होता है, वही मुक्ति रूपी वधु का श्रेष्ठ दुल्हा होकर उसी को मुक्ति वरमाला डालती है; इस समय श्रोतागण निश्चित ही पूछेंगे की इस प्रकार सतगुरुजी की सेवा के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए, ऐसा निर्धार करने वाला अगर कोई होगा तो हमें उसके बारे में बताईए।

सतगुरु सिद्धारूढ़ स्वामीजी जब सिद्धाश्रम में निवास कर रहे थे उन दिनों में प्रतिदिन उनके पास चनमल्लप्पा नाम का एक सद्‌गुणी भक्त आता था। सतगुरुजी के चरणों पर उसकी श्रद्धा तथा भक्ति दृढ़ होने के कारण घर के कामधाम की चिंता उसके मन से अपने आप ही नष्ट हुई थी, इसलिए वह हमेशा सतगुरुजी के पास आकर बैठता था। सतगुरुजी जो कहते वह कार्य करना, अगर कार्य न हो तो कौन सा कार्य करुँ ऐसा उन्ही से पूछना और कार्य न हो तो कार्य की सेवा की प्रतीक्षा करते हुए शांत मन से बैठे रहना, इस प्रकार वह समय बिताता था। रात के समय दूसरों के घर जाकर बुनाई का काम करके जो थोड़ा बहुत धन प्राप्त करता था, उसी से वह पत्नी के साथ घर गृहस्थी चलाता था। एक दिन घर पहुँचने के पश्चात पत्नी ने क्रोध से झल्लाकर उसे कहा, "आप तो हमेशा सिद्धारूढ़जी के पास बैठे रहते हैं, तो घर गृहस्थी की चिंता कौन करेगा? चिंता किए बगैर घर जाते ही अनायास भोजन मिलता है इसलिए सही समय पर घर भोजन करने आ जाते हैं, केवल पेट पालने के लिए काम करते हैं; आप को थोड़ी सी भी लज्जा आती है? आप दिनभर अगर काम करेंगे तो मुझे कुछ अच्छी साड़ियाँ मिलेगी तथा अन्य महिलाओं के समान मैं भी गले में डालने के लिए सोने की माला बनवा सकूँगी। आप जैसा गरीब तथा मनहूस पति मिलने के कारण, अन्य महिलाओं के समान कब मैं सुंदर गहने

पहनूँगी? इस जन्म तक मेरे लिए आप का साथ काफ़ी है, कम से कम अगले जन्म में मुझे इस प्रकार की संगती कतई नहीं चाहिए; अगर मेरा विवाह किसी दूसरे के साथ हो जाता तो निश्चित ही मैं इससे बेहतर स्थिति में रहती।" चनमल्लप्पा ने उसे कहा, "क्या मैंने तुम्हें मेरे साथ बाँध रखा है?" उसपर आगबबूला होकर वह बोली, "अगर ऐसा है, तो स्वयं भिखारी होने के बावजूद मुझ से विवाह करके यहाँ मुझे क्यों ले आए?" उसने कहा, "तुम जानती हो की मैं भिखारी हूँ, तो अब तुम चैन से किसी धनवान के घर जा सकती हो। अभी इसी समय भिखारी होकर मैं तुम्हारे शब्द सच करके दिखाता हूँ।" ऐसा कहकर उसने तुरंत पहने हुए कपड़े उतार दिए तथा केवल एक लंगोटी पहनकर हाथ में झोली लेकर वह निकल पड़ा। उसके पश्चात अनेक घर जाकर सिद्धनाथजी का नाम पुकारने के उपरांत अगर कोई भिक्षा देता है, तो उसे लेकर वह निकल पड़ा। इस प्रकार कुछ घरों में भिक्षा माँगने के उपरांत भिक्षा से झोली भरने के पश्चात वह सिद्धाश्रम पहुँचा और सिद्धनाथजी के सामने झोली रखकर हाथ जोड़कर खड़ा रहा। उसे उस अवस्था में देखकर सतगुरुजी ने पूछा, "घर लौटने के पश्चात घर में क्या हुआ वह मुझे सही सही बता दो।" उसने घटी हुई घटना का विवरण दिया और कहा, "मेरी पत्नी ने मुझे बोधित किया। उसके कठोर तथा तीक्ष्ण शब्दों से मेरा हृदय जखमी होने के कारण मैं घर गृहस्थी से ऊब गया हूँ, मानो उसने मुझे विराग का बोध किया हो। अब मैंने आप के चरणों में शरण आया हूँ।" दयालु सतगुरुजी ने उसे स्वीकार करने के उपरांत उसे अत्यंत आनंद हुआ, उस दिन से चनमल्लप्पा सतगुरुजी के साथ मठ में ही रहने लगा।

वह प्रतिदिन बस्ती में (मठ हुबली शहर के बाहर था) जाकर भिक्षा लेकर आता और सतगुरुजी के सामने रख देता था, उसमें से जितना वे उसे देते थे, उतना ही वह खाता था। चनमल्लप्पा मन ही मन विचार करने लगा की मैं गुरु सेवा करने के लिए इस मठ में रहने लगा हूँ, परंतु अगर मैं उनकी सेवा न करुँगा तो इस मृत्युलोक में मेरा जीवन व्यर्थ ही हो जाएगा। गुरु सेवा में मधुरता है, मैं उसे चखूँगा, गुरु गृह में प्रवेश कर ही लिया है तो उनके चरण मैं कभी भी नहीं छोड़ूँगा। इस प्रकार भावपूर्ण होकर वह प्रात:काल सतगुरुजी के उठने से पहले जल्दी उठकर, हाथ में गरम पानी का लोटा लेकर उनके कक्ष के

बाहर उनकी प्रतिक्षा करता हुआ बैठा रहता था। सतगुरुजी जगकर कक्ष के बाहर आते ही वह झट से आगे बढ़कर, उन्हे शाल ओढ़ाकर उनका हाथ पकड़कर बाहर ले आता था। सतगुरुजी शौचस्थान जाते ही उनके पीछे पीछे वह लोटा लेकर जाता था, वे शौचस्थान से बाहर आने के पश्चात, हाथ मुँह धोते समय उन्होंने कुल्ला करके थूका हुआ जल एक बर्तन में इकट्ठा करके, उसे पवित्र तीर्थ समझकर पी जाता था। रात के समय जब सतगुरुजी सोने जाते, तब आदर पूर्वक उनके लिए बिछाना बनाकर, जब तक वे "बस" न कहते तब तक उनके चरणों की मालिश करता था। सतगुरुजी के कक्ष के बाहर वह स्वयं सोता था; अंदर से अगर कुछ आवाज सुनाई दी तो, वह झट से उठकर भीतर जाकर देखकर आता था। इस प्रकार दिनरात सेवा करने के पश्चात भी चनमल्लप्पा का मन तृप्त नहीं होता था, जिससे वह मन ही मन कुढता था। इसी प्रकार एक दिन जब वह सोया हुआ था, कुछ आवाज सुनाई देने के कारण चनमल्लप्पा जग गया, झट से उठकर उसने देखा तो एक महाभयंकर साँप उसे दिखाई पड़ा। देखते देखते वह साँप सतगुरुजी के कक्ष के भीतर घुस गया। गुरु महाराज भीतर शांति से सोये हुए हैं यह जानकर उन्हें साँप से बचाने के लिए, चनमल्लप्पा आगे बढ़ा। एक क्षण में अपने आप के भूलकर उसने कसकर साँप की पूँछ पकड़ ली तथा जोर से खींचकर उसे बाहर निकाला। क्रोधित हुए साँप ने फन उठाकर उसके हाथ पर दंश किया। फिर भी बिलकुल कदर किए बगैर वह उस नाग को पकड़कर दूर ले गया। रात की नीरव शांति में होने वाली आवाज से सतगुरुजी जग जाएँगे, यह सोचकर वह नाग को दूर ले गया। अन्य प्राणियों को नाग दंश करेगा इस भय से उसने उसे मार दिया। उसके पश्चात नाग के दंश की बिलकुल कदर किए बगैर वह फिर अपनी जगह लौटकर सो गया।

देखते देखते नाग का विष उसके शरीर में भिद गया और वह होश खो बैठा। अचानक सतगुरुजी जग गए, उन्होंने बाहर आकर देखा तो चनमल्लप्पा जमीन पर अस्तव्यस्त होकर पड़ा हुआ दिखाई दिया। जब आवाज देकर उसे जगाने के उनके प्रयत्न विफल हुए, तब वे जान गए की वह बेहोश हुआ था। उसे ऐसी स्थिति में देखकर सतगुरुजी आश्चर्य से दंग रह गए। तब वे सोचने लगे की प्रतिदिन मेरे उठने से पहले यह चनमल्लप्पा उठता है, परंतु आज उसे

क्या हो गया है? ऐसा विचार करके बाहर आकर उन्होंने हिलाकर चनमल्लप्पा को जगाने के प्रयत्न किए। कई बार उसे पकड़कर हिलाने के पश्चात भी वह जग ही नहीं रहा था, जब ज्ञान दृष्टि से उन्होंने देखा तब वे समझ गए की उसे सर्प दंश हुआ है। उस समय दयालु सतगुरुजी ने कहा, "आज मुझ पर आई हुई आफत का इसने निवारण किया, देह बुद्धि का बीज जलाकर उसने अपना जीवन सार्थ किया। अब इसे मरने नहीं देना चाहिए, अन्यथा सतगुरुजी भक्त रक्षक होते हैं, यह उनका बाना व्यर्थ हो जाएगा।" ऐसा विचार करके सतगुरुजी ने मुख से "शिवाय नम:" इस मंत्र का उच्चारण करते हुए, उनके अमृततुल्य हाथ से सर्पदंश हुए स्थान पर स्पर्श किया, उसी क्षण उसका शरीर सचेत हुआ और वह उठकर सतगुरुजी की ओर देखने लगा। उस समय चनमल्लप्पा ने कहा, "गुरुदेव, न जाने मुझे इतनी गहरी नींद कैसे आयी! गहरी नींद में मैंने एक सपना देखा, आपको मैं उसका विवरण देता हूँ। यमदूत मुझे यम के पास ले गए, इतने में आप जैसा एक साधु वहाँ आया और उसने यम से कहा, 'इसे अभी इसी समय छोड़ दो,' उसपर यम ने साधु की पूजा की और कहा, 'आप की आज्ञा हमें शिरोधार्य हैं।' उसके पश्चात यम के कहने पर यमदूतों ने मुझे यहाँ लाकर छोड़ दिया।" उसकी बातें सुनकर मंद हास्य करते हुए सतगुरुजी ने कहा, "अरे भाई! तुम हाथ में नाग को पकड़कर यहाँ से क्यों चले गए?" उसने कहा, "गुरुदेव, आप सर्वज्ञ हैं, मैं आप को क्या बताऊँ?" ऐसा कहते हुए चनमल्लप्पा ने सतगुरुजी के चरण छू लिए और कहा, "यह शरीर आपका है तथा आप ही ने उसकी रक्षा की है। आप ही ने इस शरीर को आपकी सेवा के रख लेने के कारण, इस के होने या न होने से मुझे सुख या दुख कैसे होगा?" उसके ये प्रेम भरे शब्द सुनकर दयाघन सिद्धनाथजी मन ही मन संतुष्ट हुए।

एकबार सतगुरुजी ज्वर से पीड़ित होकर बिछाने पर लेटे हुए थे। उस समय चनमल्लप्पा पूरी रात सिद्धजी के चरणों के समीप बैठा रहता था। उस समय सिद्धनाथजी को खाँसी भी थी। जब सतगुरुजी खाँसकर खखार थूँकते थे, उस समय चनमल्लप्पा अपना मुँह खोलकर थूँका हुआ खखार मुँह में लेकर, उसे अमृततुल्य समझकर निगल जाता था, जिससे उसका चित्त निर्मल होता चला जा रहा था। रातभर गुरुदेव के चरणों के पास बैठे बैठे सतगुरुजी का ही

चिंतन करते रहने के कारण, उनके प्रति प्रेम उमड़ आकर उसकी आँखों से अविरत अश्रु बहते रहते थे। गुरुसेवा किस प्रकार करनी चाहिए, ऐसा सोचते हुए उसने कहा की मैं सतगुरुजी की पादुका बनकर हमेशा उनके चरणों के पास रहूँगा। अगर मैं उनका बिछाना बन गया तो सतगुरुजी मुझ पर लेटने से उनके पवित्र स्पर्श से मुझे आनंद होगा, जिसका मैं उपभोग करुँगा। अगर मैं उनका ओढ़ना बनूँ तो सतगुरुजी मुझे स्वयं के शरीर पर ओढ़ लेंगे, जिससे उनके शरीर की सात्विक सुगंध लेकर रातभर मुझे सुख मिलेगा। उन्हें जिन वस्तुओं की आवश्यकता होगी, वे सारी वस्तुएँ मैं बनूँगा, तभी सतगुरु सेवा करने की मेरी मनोकामना पूरी होगी, जिससे सतगुरुजी का स्नेह मैं प्राप्त करुँगा। ऐसे परम पवित्र सतगुरुजी के स्नेह के लिए मैं इस शरीर को छीजाऊँगा, जिसके लिए मैं अनेक जन्म लूँगा। मैं फूल की बेल बनकर, फूलों से उनकी सेवा करुँगा। इस प्रकार की सेवा उससे कब होगी यह सोचते सोचते वह मन ही मन तड़पता था। इतने में मूत्र विसर्जन के लिए सतगुरुजी उठ गए। उस समय चनमल्लप्पा ने उन्हें कहा, "गुरुदेव, इस बेवक्त आप बाहर मत जाईए, यहीं बैठिए, मूत्र विसर्जन के लिए मैं एक बर्तन की व्यवस्था करता हूँ," ऐसा कहकर उसने अंधेरे में स्वयं का मुँह खोल दिया और सतगुरुजी ने उसमें मूत्र विसर्जन करते ही, उस मूत्र को वह गटगट पी गया। धन्य धन्य है वह शिष्य चनमल्लप्पा! इससे भी अधिक श्रेष्ठ सेवा कौन सी हो सकती है? सारे वेद, शास्त्र तथा पुराणों को खोजने से भी उसके समान गुरु सेवक कहीं भी नहीं मिलेगा। उसने देह बुद्धि का त्याग करके देवाधिदेव होने वाले सतगुरुजी से नाता जोड़ा, जिससे गुरु कृपा प्राप्त होकर अपने आप उसके हृदय में आत्मज्ञान प्रकट हुआ। चनमल्लप्पा ने गुरु सेवा की चरम सीमा पार की तथा सिद्धनाथजी के अवतार में प्रकट हुए आत्माराम की भक्ति करके वह ईश्वर के परम पवित्र मोक्ष धाम पहुँचा। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह पचासवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥